

कबीर का स्त्री संबंधी चिंतन

दीप कुमार मित्तल, शोधार्थी

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

बृहद स्तर पर राजनीतिक सत्ताओं के बदलने पर सामाजिक संरचना में फेरबदल होता है। नवीन वर्ग अस्तित्व में आते हैं, पारंपरिक वर्गों का वर्चस्व टूटता है; जिससे सामाजिक संघर्ष की परिस्थितियों और तरीकों में बदलाव आता है। इस स्थिति में साहित्य की भूमिका और उसके सामाजिक आधार भी बदल जाते हैं। कभी-कभी इस प्रक्रिया में साहित्य शोषकों की स्तुतिगान का माध्यम बन जाता है तथा जनता की समस्याओं से उसका कोई संबंध नहीं रहता। इसके विपरीत कभी-कभी यह प्रक्रिया साहित्य को जनता से जोड़ देती है। ऐसी स्थिति में साहित्य जनता के शोषण की दशाओं का निरूपण करता हुआ जन-संघर्ष को बढ़ावा देता है। भक्ति साहित्य की भी यह विशेषता है। प्रस्तुत शोध पत्र में महात्मा कबीर के स्त्री संबंधी चिंतन पर दृष्टिपात किया गया है।

प्रस्तावना

भक्ति साहित्य ने न केवल तत्कालीन जनता को संघर्ष की प्रेरणा दी, अपितु आज भी वह अपनी सामाजिक भूमिका निभा रहा है। कबीर, सूरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, मीराबाई, तुलसीदास आदि भक्तिकालीन कवियों की वाणी इतनी लंबी अवधि के पश्चात भी जन सामान्य के मध्य से लुप्त नहीं हुई है। जनता से जुड़ाव का यह सबसे बड़ा प्रमाण है।

हिंदी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल कहा जाता है। भक्तिकाल के उदय के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं, किन्तु सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि इस दौर का साहित्य

तात्कालिक समाज में उभरे उस सांस्कृतिक आंदोलन की देन है, जिसे भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता है। भक्ति आंदोलन एक सांस्कृतिक आंदोलन था, जिसने समाज के सभी अवयवों को प्रभावित किया। बकौल मैनेजर पाण्डेय “भक्ति आंदोलन के साथ भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य के विकास की नई अवस्था का आरंभ होता है; जिसकी अभिव्यक्ति दर्शन, धर्म, कला, साहित्य, भाषा और संस्कृति के दूसरे रूपों में दिखाई देती है।”¹ भक्ति आंदोलन के साथ जन सामान्य की संस्कृति के उत्कर्ष का काल शुरू होता है। अभिजन संस्कृति को लोक संस्कृति चुनौती देती है। परिणामतः अभिजन

संस्कृति की परिधि अत्यंत सीमित हो जाती है, जिसका प्रभाव साहित्य में भी दिखलाई देता है।

कबीर (1398-1518 ई.) भक्तिकालीन कवियों में सबसे महत्वपूर्ण कवि हैं। उनका लालन-पालन समाज में निम्न समझी जाने वाली उस जुलाहा जाति में हुआ जो कुछ समय पूर्व इस्लाम को अपना चुकी थी। निर्गुण धारा की शुरुआत कबीर के माध्यम से होती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' (1942 ई.) के माध्यम से कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को हिंदी आलोचना में स्थापित किया। परवर्ती दौर में मार्क्सवादी आलोचना ने यह बात भिन्न-भिन्न ढंग से कही। कबीर की अनेक विशेषताएं हैं, जो उन्हें समकालीन रचनाकारों से पृथक करती हैं। उन्होंने जांत-पांत, ऊंच-नीच, छुआछूत आदि सामाजिक असमानता को बढ़ावा देने वाली कुरीतियों का खुलकर विरोध किया। इन अमानवीय प्रथाओं को संहिताबद्ध करने वाले धर्मों का विरोध किया। धर्म के नाम पर समाज में फैले अंधविश्वास, व्यभिचार, आडम्बर की निंदा करते हुए धर्म के कर्मकांडी रूप की अवहेलना की। मंदिर और मस्जिद के नाम पर फैलाए जाने वाले सामाजिक विद्वेष और दंगों की भर्त्सना की। कर्म की जगह जन्म के आधार पर मनुष्य की योग्यता का निर्धारण करने वाली व्यवस्था का अस्वीकार किया। कुल मिलाकर वे प्रचलित पक्षपाती सामाजिक संरचना को नकार कर समानता को बढ़ावा देने वाली सामाजिक व्यवस्था के स्वप्न को साकार करने का उद्योग करते हैं। इन विशेषताओं के आधार पर आलोचक उन्हें 'आधुनिक चित्त' के निकट समझते हैं।

कबीर की विद्रोही चेतना

कबीर की विद्रोही चेतना जब आध्यात्मिक रूप ले लेती है तब वह निर्गुण रूप ग्रहण कर लेती है। दोनों एकमेक हैं, उन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। बकौल नामवर सिंह "सभी स्थापित मान्यताओं का निषेध ही निर्गुण है और इतने बड़े निषेध में दुख अस्वाभाविक नहीं है। किन्तु यह अनास्था का आत्मघाती दुख नहीं है और न ही दुविधा का संत्रास है। निर्गुण का स्वीकार करके ही कबीर ने बाकी सबको अस्वीकार करने का साहस हासिल किया। कहना न होगा कि 'निर्भय निरगुण' गाने वाले कबीर के अंदर कोई गहरा स्वीकार है। यह निर्गुण कोई रहस्य नहीं, बल्कि एक क्रांतदर्शी कवि की उदात्त कल्पना है: सभी वांछित मूल्यों और सपनों का संभाव्य मानचित्र।"²

कबीर की विद्रोही भावना पर किसी भी आलोचक को ऐतराज नहीं है। सभी विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि उन्होंने निचली जाति के लोगों में आत्मविश्वास को जगाया तथा संघर्ष की भावना को जन्म दिया। लेकिन जब कबीर की नारी दृष्टि का अध्ययन किया जाता है; तब अध्येता के सामने उलझन उपस्थित हो जाती है। कबीर की विद्रोही चेतना से उनके नारी-संबंधी दृष्टिकोण का कोई तालमेल नहीं बैठता है। जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और धर्म व्यवस्था का विरोध करने वाले कबीर सती प्रथा की इन शब्दों में प्रशंसा करते हैं :

“टूटी बरत अकास थै, कोई न सकै झड़ झेल।

साथ सती अरु सूर का, अँणी ऊपिला खेल।”³

आकाश से रस्सी टूट जाने पर इंसान को कोई नहीं बचा सकता है। अर्थात् ऊपर से आदेश आने

पर कोई भी व्यक्ति इस लौकिक संसार में ठहर नहीं सकता है। अग्नि और ऊपला जिस तरह साथ-साथ रहते हैं, उसी तरह ऐसे समय में सती और सूर्य का साथ नहीं छूटता है। कबीर की इन पंक्तियों को पढ़कर अचरज होता है कि जो कवि मानवता की बात करता है, वह सती प्रथा जैसी वीभत्स और मानव विरोधी प्रथा का समर्थन क्यों करता है? ऐसी पंक्तियों की संख्या भी अत्यंत सीमित नहीं है। अतः कबीर के नारी दृष्टिकोण पर विस्तार से चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है।

कबीर की कविता में नारी

कबीर की कविता में नारी मूल रूप से तीन संदर्भों में आती है: (1) साधना पथ में बाधक बनकर, (2) राम से मिलाने के लिए कामभावना के रूप में और (3) सामाजिक मान्यताओं के अन्वेषण के क्रम में। तीनों ही जगह नारी अलग-अलग रूपों में उपस्थित होती है, किन्तु उसमें एक क्रमिकता निरंतर रहती है, जो तीनों रूपों को आपस में विच्छिन्न होने से रोकती है। इस अविच्छिन्नता पर चर्चा करने से पूर्व कबीर के साहित्य में मौजूद स्त्री की छवियों को जान लेना आवश्यक लगता है। साधना के संदर्भ में कबीर समाज में प्रचलित स्त्री संबंधी पारंपरिक मान्यताओं से सहमति जताते हैं। वे साधकों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि स्त्री के कारण अनेक महान व्यक्तियों का पतन हो गया।

अंधे व्यक्ति को जिस प्रकार अपने पैर में चुभा कांटा दिखाई नहीं देता है और वह दर्द भुगतने के लिए मजबूर हो जाता है; उसी प्रकार समस्याओं का निदान संभव है, किन्तु कामिनी के मोह-पाश

में फंसे व्यक्ति के उद्धार का कोई मार्ग नहीं है। वे पुरुष जो भक्ति, मुक्ति और आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं; उन्हें सदा स्त्री से दूर रहना चाहिए :

“नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होई।

भगति मुक्ति निज ग्यान में, पैसि न सकई कोई।”⁴

स्त्री के साथ रहने वाला पुरुष तीन प्रकार के सुखों को कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। अतः जो साधक ज्ञान, भक्ति और मुक्ति पाने का अभिलाषी है, उसे स्त्री के निकट जाने से परहेज करना चाहिए। साधना के संदर्भ में कबीर स्त्री की कामभावना से इतने भयाक्रांत दिखलाई देते हैं कि स्त्री की निंदा करने लगते हैं। स्त्री की कामिनी, सुंदरी, मोहिनी, माया आदि छवियों की उन्होंने अनेक प्रकार से निंदा की है और साधकों को आवश्यक रूप से इनसे बचने का उपदेश दिया है। कबीर ग्रंथावली के ‘कामी नर कौ अंग’, ‘मायाकौ अंग’ आदि शीर्षकों में शामिल पदों में ऐसे पदों की भरमार है। उपर्युक्त शीर्षकों के अन्यत्र भी कबीर के ऐसे पद हैं जिनमें साधना के मार्ग में बाधक बनकर खड़ी होने वाली स्त्री की आलोचना की है। कबीर का नारी संबंधी यह दृष्टिकोण पारंपरिक विचारों का समर्थन करता है। पितृसत्तात्मक, व्यवस्था इसी प्रविधि पर स्त्री को पुरुष से निम्न स्थापित करती है। साधना मार्ग में आने वाली स्त्री के प्रति कबीर का व्यवहार पितृसत्तात्मक ‘पुरुष’ के समान है। कबीर जब स्वयं साधना के पथ पर आरूढ़ होते हैं, तब खुद स्त्री का रूप ग्रहण कर लेते हैं। अपने ईश्वर को पति मानते हैं और स्वयं उसकी पत्नी

बनकर, उससे मिलने की आतुरता जाहिर करते हैं। मिलन की आतुरता को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें स्त्री की कामभावना श्रेयस्कर लगती है। वे एक पति के वियोग में व्याकुल विरहाग्नि में दप्त पत्नी की भांति तड़पते हैं और अपने पति के लौटने की आशा में सुध-बुध खोकर प्रतीक्षा करने लगते हैं। इस क्रम में कबीर रूपी स्त्री अपने प्रियतम का इंतजार करते-करते और उसको खोजते-खोजते अत्यंत कृशकाय हो जाती है। कबीर के शब्दों में :

“अँषडियाँ झाई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।

जीभडियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि।”⁵

इतनी विफलता के बावजूद भी कबीर रूपी स्त्री का मन थकता नहीं है। प्रिय मिलन के लिए तरसने वाला मन निरंतर खोजने की शक्ति प्रदान करता है। प्रश्न उठाता है कि जो कबीर साधना पथ पर चलने वाले दूसरे पथिकों को स्त्री से बचने का उपदेश देते हैं, स्वयं अपनी साधना के दौरान क्यों स्त्री का रूप धारण कर लेते हैं? क्या ईश्वर के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने का यह एकमात्र मार्ग है? हिंदी आलोचना में इन प्रश्नों का भी उत्तर खोजा गया है। पुरुषोत्तम अग्रवाल का मानना है कि कबीर के यहां साधना के विषय में स्त्री को लेकर उभरने वाला द्वन्द्व स्त्री मुक्ति के संघर्ष से जुड़ा हुआ है। वे लिखते हैं, “साधना के धरातल पर द्वन्द्व है-नारी निंदा की रूढ़ि और नारी रूप धारण करने की युक्ति के बीच। यह द्वन्द्व जो कबीर को परंपरा से ही प्राप्त है-कबीर की कविता में और भी रोमांचक बन जाता है-उनकी स्वाभाविक पारदर्शिता के कारण, उनकी अद्वितीय काव्य क्षमता के कारण।

यहां फॉक सर्जनात्मक होने के साथ-साथ अपने सांस्कृतिक आशयों में भी उत्तेजक और सार्थक है। बार-बार कौंधती है यह सच्चाई इस फॉक से गुजरते हुए कि महान कविता विचारधात्मक ज्ञानमीमांसाओं पर सहज विवेक और अनुभव पर आधारित प्रश्नचिन्ह लगाने का काम भी करती है-मर्यादावादी संस्कारों पर टिके संसार के समानान्तर संवेदना और प्रश्नाकुलता का एक प्रतिसंसार रचने का काम भी करती है।”⁶ अगर यह मत स्वीकार किया जाए कि मर्यादावादी समाज से टकराते हुए कबीर स्त्री की रति भावना को अपनाकर स्त्री मुक्ति की भावना को व्यक्त करते हैं तो इससे कबीर के उन पदों का कोई संबंध स्थापित नहीं हो पाता है, जो सामाजिक परिदृश्य से संबद्ध है।

कबीर के काव्य में स्त्री का तीसरा रूप तब उभरता है; जब वे सामाजिक, मान्यताओं का अन्वेषण करते हैं। कबीर के काव्य में सामाजिक-संबंधों की वैधता और अवैधता की गहरी पड़ताल है। वे स्त्री के विषय में प्रचलित पवित्रता की धारणा पर गंभीरता से विचार करते हैं। समाज में स्त्री पर लागू होने वाली पतिव्रता, सती प्रथा जैसी मान्यताएं स्त्री-शरीर की पवित्रता से जुड़ी हैं और तात्कालिक समाज में इनका व्यापक स्तर पर प्रचलन था। कबीर भी स्त्री के जीवन की इन दोनों स्थितियों पर अनेक रूपों में विचार करते हैं। उनका नारी रूपी साधक भाव भी इससे मुक्त नहीं है। कबीर स्वयं को परमात्मा की पतिव्रता पत्नी मानते हैं। वे कहते हैं:

“उस संमथ का दास हों, कदे न होइ अकाज।

पतिव्रता नाँगी रहै, तो उसही पुरिस कौ लाज।।

धरि परमेसुर पाहुंणां, सुणों सनेही दासा।

षट रस भोजन भगति करि, ज्युँ कदे न छाड़े
पास।।'7

अति समर्थ पुरुष का सेवक भी कभी किसी वस्तु का मोहताज नहीं रहता। ऐसे पुरुष की पत्नी अगर वस्त्रों के अभाव के कारण नग्न रहने को मजबूर है तो इस अवस्था में उसका पति ही लाज गंवाता है। ऐसे पति के मिलने पर कौन उससे विमुख रहना चाहेगा। कबीर स्वयं ही पतिव्रता स्त्री नहीं बनते हैं, अपितु दूसरों को भी इसका उपदेश देते हैं। उनका मानना है कि स्त्री के लिए अपने पति को खुश रखना ही सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। अपने शृंगार और व्यवहार से वह इस कार्य को पूरा करती है। पति के अनुरंजनार्थ ही पतिव्रता का सारा

शृंगार है :

“नवसत साजे काँमनी, तन मन रही सँजोड़।

पीव कै मन भावे नहीं, पटम कीयें क्या होड़।”8

स्त्री द्वारा किए जाने वाले सोलह शृंगार से अगर पति का मन खुश नहीं होता है तो पत्नी द्वारा किया गया शृंगार अर्थहीन है। इस प्रकार की पंक्तियां स्पष्ट तौर पर स्त्री के विषय में प्रचलित पारंपरिक धारणा का समर्थन करती हैं। कबीर साधना की स्थिति में अपने को जिस कामिनी के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वह पितृसत्तात्मक समाज में गढ़ी गई स्त्री की निर्मिति से भिन्न नहीं है। सामाजिक विषयों के विश्लेषण के क्रम में भी वे उन सभी मान्यताओं का समर्थन करते हैं, जिसमें एक स्त्री मनुष्य से वस्तु के रूप में तब्दील हो जाती है। ऐसी

व्यवस्था में न वह अपने अनुसार रह सकती है और न ही अपनी स्थिति पर विचार कर सकती है। उसका जीवन दूसरों के अनुसार संचालित होता है। कबीर के द्वारा किया गया सती वर्णन भी इसका बोध प्रस्तुत करता है।

सती प्रथा का वर्णन कबीर दो संदर्भों में करते हैं। पहला, अपने ईश्वरीय प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए और दूसरा, सामाजिक मान्यताओं को निभाने के क्रम में। दोनों ही स्थितियों में लौकिक जगत से सती का रिश्ता रहता है। सती होने के लिए स्त्री के पास पहले अपने पति के शव का होना जरूरी है और वह उसके मरने के पश्चात ही हासिल किया जा सकता है। कबीर अपने जिन पदों में लौकिक संदर्भ में सती प्रथा की प्रशंसा करते हैं, तब पदों का अभिप्राय आसानी से समझ में आ जाता है। लेकिन जब वे अपने पारलौकिक पति को प्राप्त करने के लिए सती का रूपक प्रयोग में लाते हैं, तब एक अत्यंत जटिल समस्या उत्पन्न हो जाती है। इस समस्या का संबंध कबीर के पति से है। कबीर बार-बार अपनी कविता में अपने प्रियतम को अजन्मा, निरावतारी, निराकार और अनादि बतलाते हैं। ऐसे सर्वव्यापी ईश्वर की मृत्यु कैसे संभव है। घट-घट व्यापी ईश्वर का मरण किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। कबीर भी इस बात से परिचित हैं। फिर भी, वे सती का रूपक अपने प्रियतम से मिलने की भावना को जाहिर करते समय अपनाते हैं; जबकि वे जानते हैं कि चिताग्नि में जलकर भस्म होने के बाद ही पति से मिला जा सकता है :

“सती जलन कूँ नीकली, पीव का सुमरि सनेह।

सबद सुनन जीव निकल्या, भूलि गई सब देह।”9



अपने प्रियतम के स्नेह का स्मरण करके सती होने के लिए निकलने वाली स्त्री को देह के जलने का कोई दुख नहीं होता है। उसकी आत्मा (जीव) प्रियतम से मिलने चली जाती है और देह से उसका कोई रिश्ता नहीं रह जाता है। ऐसी स्थिति में कबीर की कविता में आए सती के सभी प्रसंग आम जीवन से जुड़े हुए लगते हैं। इन प्रसंगों में कबीर सती प्रथा की प्रशंसा करते हुए जान पड़ते हैं। वे कहते हैं:

“मैं अपने साहब संग चली।

हाथ में नारियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।

लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढि के चली।

नदी किनारे सतगुरु भेंटे, तुरत जनम सुधरी।

सन्दर्भ

1 मैनेजर पाण्डेय, 2003, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन,

नई दिल्ली पृ. 3

2 नामवर सिंह, 2010, कविता की जमीन और जमीन की कविता, राजकमल प्रकाशन, नई

दिल्ली, पृ. 41

3 श्यामसुंदर दास (सं.), 2010, कबीर ग्रंथावली, लोकभारती प्रकाशन,

इलाहाबाद, पृ. 103

4 वही, पृ. 79

5 वही, पृ. 55

6 पुरुषोत्तम अग्रवाल, 2010, अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका

समय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 365

7 श्यामसुंदर दास (सं.), कबीर ग्रंथावली, पृ. 63

कहै कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली।”¹⁰

निष्कर्ष

इस विवेचन के आधार पर प्रतीत होता है कि कबीर स्त्री जीवन को परंपरावादी दृष्टिकोण से देखते हैं। वे स्त्री की समस्याओं को उचित ढंग से समझने में असफल रहे, स्त्री को पराधीन बनाने वाली सती प्रथा जैसी रीतियों को स्त्रियों की मुक्ति का साधन मानते हैं, पतिव्रत धर्म के पालन पर बल देते हैं। कबीर की स्त्री पितृसत्ता के ढांचे पर कोई प्रहार नहीं करती है।



8 वही, पृ. 85

9 वही, पृ. 104

10 हजारीप्रसाद द्विवेदी, 2009, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 254-255